RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper

बुद्धकालीन समाज में वस्त्र और आभूषण

डॉ0 दयानन्द कुमार

इतिहास विभाग, मगध विश्वविद्यालय, गया

संस्कृति के अन्तर्गत वस्त्रों का पहनावा भी आता है। बौद्ध धर्म में यह काफी आगे बढ़ चुकी थी। लोगों के पहनावे के शौक में पर्याप्त वृद्धि हुई थी। प्राचीन युग में कपड़ों की कताई, रंगाई, सिलाई इत्यादि को पनपने के काफी अवसर प्राप्त हुए। पालि त्रिपिटक में तथा पाणिनि के अष्टाध्यायी में इसके पर्याप्त उल्लेख मिलते हैं जिसमें कपास, रेशम, क्षोय, ऊन तथा सन के धागों से अनेक तरह के वस्त्र तैयार किये जाते थे। तन्तुवाय (जुलाहे) कपड़ा बनाना जानते थे। कपड़े बुनने के उपकरण (तन्तभण्ड) और बुनाई के स्थान जन्तु वितरणनम् के भी अनेक विवरण प्राप्त होते हैं। कपड़े बुनने के उद्योग के विकसित होने के साथ–साथ सीने पीरोने के व्यवसाय के चमकने के भी प्रमाण मिलते है। बौद्ध भिक्षु अपने चीवरों की सिलाई स्वयं करते थे। इसके लिए उन्हें सूई और कैची रखनी पड़ती थी। जातक साहित्य से ज्ञात होता है कि सूचिकार अपने व्यवसाय में काफी व्यस्त तथा निपुण थे। एक जगह पर गोल, आकर्षक, सुन्दर तथा अच्छे ढंग से खड़ी की हुई चिकनी तथा तीखी नोक वाली सूई की प्रशंसा की गई है। वे सूई रखने की नालियाँ (सूईघर) भी बनाते थे।

दर्जी काफी निपुर्ण थे। कैंची (कतरिका) का भी प्रयोग करते थे। वे लोग गृहस्थ स्त्री–पुरुषों, भिक्षु–भिक्षुणियों के पहनने के लिए नाना प्रकार के वस्त्र तैयार करते थे। कौटिल्य ने इस बात का उल्लेख किया है कि तत्कालीन समाज में कुशल कारीगर, सूत्रा, वर्य, वस्त्र और रज्जू का निर्माण करते थे। अतः इन प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाती है कि भारतवर्ष में सिले हुए कपड़े पहनने की प्रथा अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही है।

भारत वर्ष में वस्त्र अधिकांशतः निर्मित होते थे। जिन नगरों में वस्त्रोद्योग को पनपने के साधन उपलब्ध थे, वे अब व्यवसाय के प्रमुख केन्द्र बन गये। बौद्ध ग्रन्थों में काशी में रेशमी तन्तु इतने अच्छे बनते थे। उसकी ख्याति चतुर्दिक प्रसरित थी। इसके अतिरिक्त गन्धार कुडुम्बर के ऊनी वस्त्रों का बहुत मूल्य होता था। कौशय वस्त्र में चारों ओर सोने के किनारी लगायी जाती थी। राजा सोने की पगड़ी पहनते थे। राजकीय हाथी को भी सोने के कपड़े से ढंके जाते थे।

इस प्रकार यदि रेशम वस्त्रा राजाओं के लिए था तो सामान्य जनता के लिए सूती वस्त्र थे। काशि राज्य में बने कपड़े (काशीय, काशी–कुवम्) अत्यंत उत्कृष्ट माने जाते थे। उत्कृष्ट वस्त्रों में एक अड़ठकासिक नामक वस्त्र भी था जो संभवतः आधुनिक अटली के समान बार्राक कपड़ा रहा होगा। महापरिनिब्बान सूत के टीकाकार के अनुसार भगवान बुद्ध के शव को वाराणसी में बने ऐसे कपड़े से लपेटा गया था जो इतना महीन और गंठकर बुना हुआ था कि उसमें तेल भी प्रवेश नहीं कर सकता था। बनारसी वस्त्र के बारे में यह भी कहा गया है कि वह हर तरफ से नीली झलक मारता था और इसके साथ ही वह लाल, पीला तथा सफेद भी हो जाता था। जनता के सामान्य पोशाक के अतिरिक्त बहुमूल्य रेशमी वस्त्र बनाये जाते थे। जिनमें शॉल, रेशम वस्त्र बनाये जाते थे जैसे– कम्बल, आस्तरण और दरी प्रमुख थे और जो विदेश में भी बेचे जाते थे। श्रमण भिक्षु चीवर धारण करते थे जो अगरू तन्तू के बने होते थे।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि वस्त्र निर्माण उस समय का महत्वपूर्ण उद्योग था और कृषि के बाद ही इसका स्थान था। सूक्ष्म और मोटे से मोटे कपड़े का निर्माण जातक युग में पूर्णता पर होता था। वस्त्र निर्माण का प्राथमिक तरीका यह था कि पहले रूई साफ की जाती थी, तब गोले बनाये जाते थे और तत्पश्चात् सूत काटा जाता था। यह दुर्भाग्य की बात है कि जातक युग में चरखे का नाम नहीं पाते है। लेकिन इसके अस्तित्व में कोई संदेह नहीं है। गृह उद्योग भी प्रचलित था। स्त्रियाँ विशेष कपड़ा बुनकर अपनी जीविका चलाती थी। वस्त्र निर्माण का एक सुन्दर चित्र निम्न गाथा में मिलता है–

''यथापि तन्ते विततेयं च देश्पवीयति,
अपकं होति वेतब्बं एवं मच्चानजीवितं ।''

तन्तु वोयो का उद्योग उस समय समृ(पर था किन्तु यह कर्म निम्न समझा जाता था। वस्त्र वणिक को दुसिक् कहा जाता था। वस्त्र निर्माण अतिरिक्त वस्त्र रंजक भी उस समय का उद्योग था। वस्त्र रंजकों का एक स्वतंत्र उद्योग था और कुछ लोगों की जीविका इसी पर निर्भर थी। जातकों में विविध प्रकार के रंगों का उल्लेख मिलता है। उस समय वस्त्र नारंगी रंग में तथा पीले रंग में रंगे जाते थे। छाता भी लाल रंग में रंगा जाता था। रजक शब्द का उल्लेख आता है, जिसका अर्थ धोबी होता है

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved ISSN: 2349-7637 (Online)

किन्तु इसका एक अर्थ वस्त्र रंजक भी है। एक जातक में रंगे हुए कपड़े की, रंजक वाधि के अस्तित्व का भी पता चलता है। रजकों के साथ ही वस्त्र सीवन उद्योग भी प्रचलित था। सीवकों को जातकों में तुन्नकार कहा गया है। संक्षेपतः कहा जा सकता है कि वस्त्र उद्योग में भारत स्वतः पूर्ण था और उसे विदेशों पर निर्भर रहना नहीं पड़ता था। तन्तु उद्योग से भी इतना अधिक उत्पादन होता था कि उसे निर्यात करना पड़ता था।

वस्त्र और आभूषण मानव सभ्यता के अपरिहार्य अंग थे, जिनसे व्यक्ति और समाज की अभिरूचि और कलात्मकता का ज्ञान होता है।

इस प्रकार बुद्धकालीन समाज में अनेक प्रकार के धागों के वस्त्र बनाये जाते थे ओर पिटक में बहुमूल्य वस्त्रों, राजवर्ग के वस्त्रों सामान्य व्यक्ति के वस्त्रों और भिक्षु–भिक्षुणियों आदि के वस्त्राभूषणों के उल्लेख प्राप्त होते है।

बौद्ध ग्रन्थों तथा जैन एवं ब्राह्मण सूत्रा ग्रन्थों से ज्ञान होता है कि तत्कालीन समाज के स्त्री पुरुष आभूषण प्रिय थे। शारीरिक सौन्दर्य के लिए तथा अंगों को रमणीय बनाने के लिए सौन्दर्य प्रसाधनों तथा अलंकरणों की अपेक्षा होती है। अतः शरीर की बाह्यतः स्वच्छता, उस पर विलेपन लगाना केश संवारना अलंकार धारण करना आदि नागरिकों के कर्त्तव्य रहे हैं। दक्ष स्वर्णकार और मणिकार स्वती और रजत मुक्ता और मणि जड़ित अलंकारों का निर्माण कर कलाप्रिय नागरिकों के शौक की पूर्ति करते थे। वे अंगूठी (पट्टिका), मुन्द्रिका, कुंडल (वल्लिका), गले का हार (काचूर या ग्रैवयक) सुवर्ण माला या कंचनमाला, कर्णपूफल (पामडंग), कंगण (ओवतिका), चूड़ी (हत्धरण), मेखला इत्यादि अनेक प्रकार के आभूषण बनाते थे जिनका तत्कालीन समाज में प्रचलन था। सोने तथा चाँदी के अतिरिक्त मुक्ता, मणि, बैडूर्य, भद्रक, शंख, शिला, प्रवाल लोहित तथा मसारगल्न, का भी उपयोग आभूषण–निर्माण के लिए किया जाता था। मणियों का प्रायः सोने–चांदी के गहनों में गड़ा जाता था।

इन समय के नागरिक पुष्पमालाओं, गुलदस्तों, सुगंधित आलेपनों तथा इत्र के प्रेमी थे। मालाकार भाँति–भाँति के सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पों से भिन्न–भिन्न आकार की मनोहर पुष्पमालाओं को गूथकर शौकीन नागरिकों को बेचा करते थे। पाल–निकाय में दक्षमालाओं द्वारा पुष्पहार गूथने के वर्णन मिलते है। इत्र बेचने वालों (गंधक) तथा इत्र की दुकान के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं जिनसे तत्कालीन समाज में इसकी लोकप्रियता प्रभावित होती है। महावग्ग में चंदन, तगर, कृष्णानुसारि, कातिय तथा, भद्रमुक्तक से आलोचनों को सुगंधित करने का उल्लेख किया गया है। निकायों में मूलगंध, पुष्पगंध, फलगंध तथा रसगंध के उल्लेख मिलते है। चन्दल, कालानुसारि तथा वस्सिका से बने सुगंध सर्वोतम माने जाते हैं। इत्र बनाने में दो तरह के चन्दन काम में लाये जाते थे अर्थात् हरिचंदन तथा लोहित चंदन। कासिक चंदन शब्द के उल्लेख से प्रतीत होता है कि काशी इत्र निर्माण में अग्रणी था और वहाँ बने इत्र तथा आलेपन बनाये जाते थे उनमें वल्लिका, मल्लिका, कमल तथा प्रियंसु प्रमुख थे। अगर और तगर के भी सुगंध बनते थे। सब्बसंहारक नामक इत्र अनेक सुगंधों के मिश्रण से बनता होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. बौद्ध धर्म के मूल सिद्धांत : भिक्षुधर्म रक्षित, ममता प्रेस, वाराणसी।
2. बौद्धधर्म के 2500 वर्ष : पब्लिकेशन डिविजन, दिल्ली।
3. भारतीय दर्शन : आचार्य बलदेव उपाध्याय, काशी, 1960।
4. बौद्ध धर्म का प्रभाव : डॉ0 विद्यावती मालविक, वाराणसी, 1966।
5. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, प्राचीन भारत का इतिहास।
6. मौर्य साम्राज्य का इतिहास, सत्यकेतु विद्यालंकार।
7. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, के.सी. श्रीवास्तव।

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)